UNIVERSAL LIBRARY
OU_182548
UNIVERSAL LIBRARY

गीत मैं कैसे लिखूँ .

❀

जगदीश शर्मा

❀

ऐलोरा पब्लिशिंग हाउस
छत्ता बाजार,
मथुरा ।

OUP—68—11-1-68—2,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 353 G Accession No. H3571

Author शर्मा, जगदीश।

Title गीत मैं कैसे लिखूं. 1958.

This book should be returned on or before the date last marked below.

गीत मैं कैसे लिखूँ....

जगदीश शर्मा
'साहित्यरत्न'

गीत मैं कैसे लिखूँ...

[सरस गीत - संग्रह]

जगदीश शर्मा

ऐलोरा प्रकाशन

प्रथम संस्करण–जून १९५८ ई०

★

★

मूल्य	:	दो रुपया पचास नये पैसे
कवि	:	जगदीश शर्मा, साहित्यरत्न
भूमिका	:	राजेश दीक्षित
चित्रकार	:	ब्रजकिशोर,
		शशिकांत
प्रकाशक	:	ऐलोरा पब्लिशिङ्ग हाउस, मथुरा
मुद्रक	:	लोकसाहित्य प्रेस, मथुरा

भूमिका

यौवन की दहलीज पर बैठकर मिलन की प्रतीक्षा एवं विरह की विकलता के हाथों अरमानों के जिन दीपकों में प्राणों का स्नेह ढाला जाता है, उनके सङ्गीतमय शाब्दिक-प्रकाश को ही लोक में गीत अथवा कविता के नामकरण द्वारा अभिनंदित किया जाता रहा है । अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की तीव्रता जितनी अधिक प्रखर होती है, कवि के गीतों में रसात्मकता का प्रवाह उतना ही अधिक हिलोरें ले उठता है । कविता केवल कवि के अन्तस्तल की भाषा ही नहीं है, वह भाव-प्रदेश की साम्राज्ञी, कल्पना-राज्य की स्वामिनी एवं द्वैत से अद्वैत का संयोजन कराने वाली स्वयम्बरा ज्योतिलेखा भी है । अजरा, अमरा होने के साथ-साथ वह अपने भुवन-मोहन स्वरूप से सृष्टा के मन को भी मोहित करती है और सम्पूर्ण सृष्टि के अणु-अणु से सहज-सरल तादात्म्य सम्बन्ध भी स्थापित कर लेती है ।

प्रचार, वाद, टैक्नीक अथवा प्रयोगों की दृष्टि से लिखी जाने वाली वस्तु (जो आजकल बहुतायत से लिखी जा रही है) 'नई कविता' भले ही हो, कविता हर्गिज नहीं है । उसमें न तो हृदयतल को स्पर्श करने की क्षमता होती है और न

स्निग्ध-कोमल भावों की सहज-गुरु-गम्भीरता ही । प्राणों के स्थान पर मस्तिष्क भले ही दिखाई दे, परन्तु उन ऊटपटाँग रचनाओं द्वारा न तो कवि की आत्मा को ही शान्ति मिल पाती है और न समाज का ही कोई हित-साधन होता है । 'नई कविता' के सृष्टाओं को 'रामचन्द्रिका' का 'केशवदास' मानने में हमें कोई आपत्ति न होगी, बशर्ते वे 'रामचरितमानस' के तुलसीदास बनने का अहंकार न करें ।

'कवि जगदीश' के 'गीत मै कैसे लिखूं...संग्रह के गीत अनुभूति की वीणा-शृङ्खला के तारों पर गाये गए, सुमधुर स्वरों से ओत-प्रोत तथा मानव-हृदय की गहराई को स्पर्श करने की क्षमता रखने वाले हैं—ऐसा कहने में मुझे कोई संकोच नहीं । आयु, अनुभव एवं अभिव्यक्ति की अल्पता के कारण इनमें कला-पक्ष को चाहे गौण स्थान ही क्यों न मिला हो, परन्तु भाव-पक्ष में ये एक मे एक अधिक सुन्दर हैं । आगे चल कर अनुभूति-पक्ष में ज्यों-ज्यों प्रवणता आती जाएगी त्यों-त्यों कला-पक्ष का सौष्ठव भी निरन्तर निखरता चला जायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।

हिन्दी-काव्य-जगत् के इस उदीयमान नक्षत्र के प्रति मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ, स्नेह और आशीर्वाद भी ।

मथुरा-प्रवास
निर्जला एकादशी
सं० २०१५ वि०

—राजेश दीक्षित

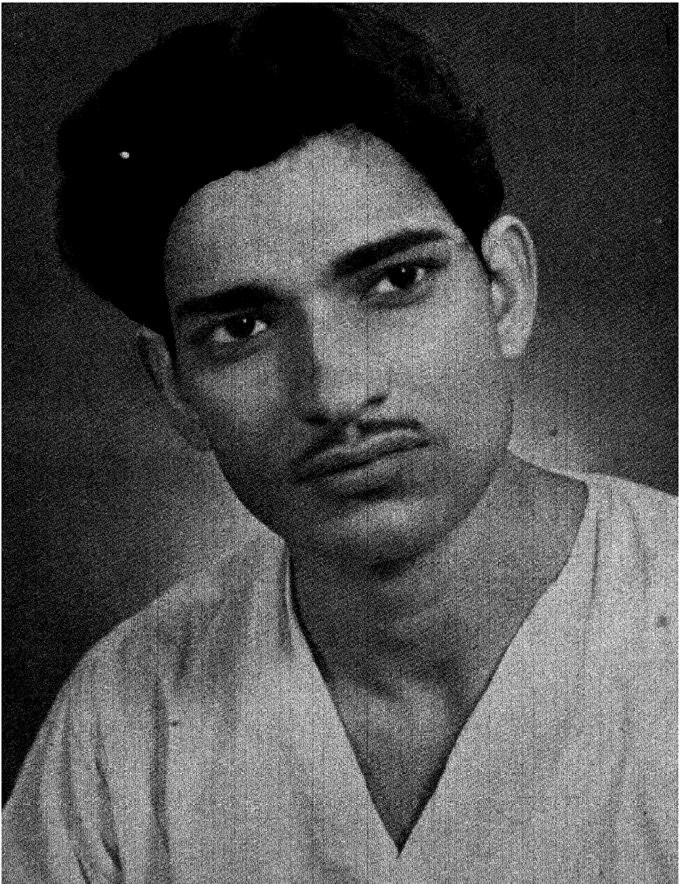

रचयिता

ये गीत........

आज से प्राय: दो वर्ष पूर्व अपनी कृति 'हिचकियाँ' (कहानी-संग्रह) लेकर जब मैं पाठकों के समक्ष उपस्थित हुआ था, तब मन को घबराहट भी थी और सकुचाहट भी। घबराहट इसलिए कि वह मेरी पुस्तक रूप में प्रकाशित रचना प्रथम थी और हिन्दी-जगत् उसका कोई स्वागत करेगा भी या नहीं—इस सम्बन्ध में कोई विश्वास नहीं था; सकुचाहट इसलिए थी कि जहाँ हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द, प्रसाद, कौशिक जैसे दिग्गज महारथी छाए हुए हैं, वहाँ अपनी तुच्छ रचनाओं को उपस्थित करने का साहस-दुस्साहस मात्र ही था। परन्तु कृतज्ञ हूँ उन प्रेमी पाठकों का, जिन्होंने हिचकियों को न केवल स्नेहपूर्वक अपनाया ही, अपितु मुझे यह गौरव प्रदान करने की कृपा भी की कि एक वर्ष के भीतर ही उसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हो गया तथा सभी ने उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर मेरा उत्साह बढ़ाया।

'हिचकियाँ' के बाद प्रस्तुत 'गीत मैं कैसे लिखूं···' शीर्षक अपनी दूसरी कृति कविता-संग्रह को लेकर मैं पाठकों की सेवा में उपस्थित हो रहा हूँ। इस बार पहले जैसी घबराहट और सकुचाहट तो नहीं है, फिर भी यह सन्देह अवश्य है कि क्या हिंदी-काव्य के उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करने वाले इस युग में इन गीतों को भी कोई स्थान मिल सकेगा ?

सच कहा जाय तो 'गीत मैं कैसे लिखूं···' के गीत न तो ख्याति अर्जित करने के लिए लिखे गए हैं और न इनके मूल में हिंदी-साहित्य में कोई स्थान प्राप्त करने की भावना ही है। हर्ष-विषाद, सफलता-विफलता एवं मिलन-विरह के उन क्षणों में जब लिखना न केवल आवश्यक ही हो गया, अपितु उसके लिए वाध्य भी हो जाना पड़ा—तभी इन गीतों का सृजन हुआ है। हृदय को आशाओं अथवा पीड़ाओं को बाहर निकाल फेंकने का सबसे सुगम साधन काव्य-सृजन ही माना गया है। उसी आधार को लेकर इन गीतों में अपने मन की व्यथा-कथा को मै उंडेल बैठा हूँ। शायद कुछ अन्य लोगों को भी इनसे कुछ शान्ति-सान्त्वना मिल जाए।

इन गीतों के विषय में तो पाठक ही कहेंगे; हाँ, अपने सम्बन्ध में दो-एक बातें अवश्य कह देना चाहता हूँ। बाल्यावस्था में ही माता, पिता एवं बहिन के स्वर्गवासी हो जाने, उनके वात्सल्य-स्नेह से वञ्चित रहने, कार्यक्षेत्र में प्रतिपल संघर्षों का सामना करने एवं जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों में

निरन्तर तृषातुर बने रहने के सहस्रों आघातों-प्रतिघातों ने मुझे कवि बनने की विवशता प्रदान की है। रो कर जिसे व्यक्त नहीं कर पाता, उसी को गा कर स्पष्ट करता रहा हूँ। यह बात अलग है कि पीड़ा के अनेक क्षणों में कभी एकाध क्रीड़ा का ऐसा क्षण भी भूला भटका आ मिला है, जिसमें कुछ मुस्कुरा भी गया हूँ, कुछ हँस कर भी कह गया हूँ। बहरहाल मेरी मनःस्थितियों के सभी प्रतिबिम्ब इस संग्रह में स्पष्ट और मुखर हो गए हैं।

प्रस्तुत संग्रह में मेरे ५४ गीत संकलित हैं। कुछ शृङ्गारी हैं—कुछ अन्य। दोनों प्रकार के गीतों को अलग-अलग विभाजित कर दिया गया है। इनमें से अधिकांश विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं, कुछ कवि-सम्मेलनों के मंच से सुनाये और गाये गये हैं। गीत कैसे हैं, इसका निर्णय पाठक स्वयं कर लेंगे, मैं तो अपनी ओर से उन्हें एक स्थान पर संजो देने भर का कर्तव्य पूरा कर रहा हूँ। इन्हें ठुकराया गया तो बुरा नहीं मानूँगा, परन्तु अपनाये जाने की दशा में मन ही मन कृतज्ञ अवश्य हो लूँगा।

अपने आदरणीय बन्धु एवं हिंदी-जगत् के यशस्वी कवि तथा लेखक श्री राजेश दीक्षित का मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जो साहित्य के क्षेत्र में प्रविष्ट होते समय से क्षण-प्रतिक्षण मेरा उत्साह बढ़ाते रहे हैं तथा मेरे मस्तक पर अपनी कृपा का वरद् हस्त रक्खे हुए हैं। उन्हीं की प्रेरणा एवं स्नेह का यह परिणाम

है कि मैं यत्किंचित् अनाधिकार चेष्टा करने का प्रयत्न कर बैठता हूँ। प्रस्तुत संग्रह में भूमिका-रूप कुछ शब्द लिखकर उन्होंने जो असीम अनुग्रह किया है, उसके लिए किन शब्दों में धन्यवाद दूं? सच तो यह है कि अब मैं उनके इतना अधिक समीप जा पहुँचा हूँ कि उनकी प्रशंसा करना आत्म-प्रशंसा करने जैसा लग उठा है। वे इसी प्रकार मुझे सदैव अपनाये रहें—यही कामना है।

प्रस्तुत पुस्तक की आवरण-सज्जा में मथुरा के सुप्रसिद्ध चित्रकार एवं मेरे अनन्य मित्र श्री ब्रजकिशोर जी एवं कलकत्ते के साथी श्री शशिकान्तजी का भी आभारी हूँ—जिन्होंने पुस्तक के भीतर का एक चित्र बनाया है। मुद्रण में लोकसाहित्य प्रेस के संचालक भाई बैजनाथ दाणी ने जो अत्यन्त परिश्रम किया है, तदर्थ मैं हृदय से आभारी हूँ।

प्रस्तुत संग्रह मेरी अनुपस्थिति एवं शीघ्रता में छापा गया है, अतः यत्र-तत्र प्रूफ संबंधी अशुद्धियों के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ। अगले संस्करण में इनका निराकरण कर दिया जायेगा।

आशा करता हूँ, 'गीत मैं कैसे लिखूं…' को भी पाठकों का स्नेह प्राप्त होगा।

—जगदीश शर्मा

सम्मतियां

छब्बीस वर्षीय तरुण-कवि श्री जगदीश शर्मा के गीतों को मैंने पढ़ा और सुना है। उनमें अभिव्यञ्जना, कल्पना एवं अनुभूति की जो तीव्रता मुझे मिली, वैसी बहुत कम देखने में आती है।

हिन्दी-काव्य-जगत में ऐसे तरुण-कवि बहुत कम है, जो हृदय की प्रेरणा से, विषय-वस्तु में डूब कर लिखते हैं। अधिकांश तो केवल तुकबंदी तथा वादों की बरबादी के हीं शिकार दिखाई देते हैं।

गीत में कैसे लिखूं......' के गीत, आशा है पाठकों द्वारा अत्यन्त उत्साह एवं स्नेह के साथ अपनाए जायेंगे।

—कुलदीप एम० ए०
हिन्दी विभाग
सेन्टजन्स कालेज, आगरा।

'गीत मैं कैसे लिखूं......' के अधिकांश गीतों को प्रकाशन से पूर्व ही कवि के मुख से सुनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो चुका है। सभी गीतों में एक अविच्छिन्न तन्मयता, अनुभूति की गहराई एवं कलात्मक अभिव्यञ्जना शक्ति के दर्शन होते है, श्रोता उन्हें सुनकर भाव विभोर हो जाता है; तथा पाठक पढ़कर कवि के भावों के साथ स्वयं भी बहने लगता है।

आशा है, हिन्दी काव्य-जगत् में प्रस्तुत संग्रह को समुचित सम्मान प्राप्त होगा।

—डा० हरिश्चन्द्र अग्रवाल
भारती साहित्य परिषद्, आगरा।

कवि जगदीश के गीतों में अनुभूति, कला, भावुकता एवं अभिव्यञ्जना शक्ति प्रभूत मात्रा में विद्यमान है।

'गीत मैं कैसे लिखूं......' के गीत सर्वत्र असीम स्नेह पूर्वक अपनाये जायेंगे, इस विश्वास के साथ मैं कवि का अभिनन्दन करता हूं।

—डा० तेज बहादुर
स्टाकमैन्स ट्रेनिंग सेन्टर
पशुलोक, ऋषीकेश
देहरादून।

गीत मैं कैसे लिखूँ....

सूची

अनुक्रमणिका

गीत की प्रथम पंक्ति	पृष्ठ
१ गीत मैं कैसे लिखूँ, जब प्रीति में मन रँग रहा है	१७
२ सचमुच जीवन की प्याली में, यौवन का मधु सुधा-विंदु है	१८
३ कहती है मुस्कान तुम्हारी, यौवन का मधु-पान किये जा	२०
४ प्यार तुम्हारा पाकर मुझको, सचमुच ही अभिमान हो गया	२१
५ आ गई दीपावली सखि, प्यार के दीपक जलालो	२३
६ मैं तूफानों से डरा नहीं, पा तेरे नयनों का सम्बल	२४
७ प्यास बुझाने को जीवन की, प्याली बन कर जिएँ झरोखे	२६
८ अश्रु-कण में निहित, उर का प्रिय ! मदिर-अभिसार मिलता	२८
९ थी वह मृदु-मुस्कान विजयिनी ! पर मुझको बनगई दुधारी	३०
१० मैं तुम्हारी प्रीति को पहिचानता हूँ, पर करूँ क्या	३२
११ तुम मुझको अपना ही जानो	३४
१२ बड़ी देर का प्यासा, प्रियतम ! बड़ो देर का प्यासा	३५
१३ दूर मत समझो मुझे प्रिय ! मैं तुम्हारे पास ही हूँ	३६
१४ है प्रवल आशीष कवि की, साधमय साधन रहेगा	३७
१५ क्यों मुझसे नेह बढ़ाती हो	३९
१६ आसव की दो लघु बूँदों पर, मैं प्यार सजाये बैठा हूँ	४१
१७ पा न सकूँ प्रतिदान तुम्हारा, ऐसा तो विश्वास नहीं है	४३

गीत की प्रथम पंक्ति	पृष्ठ
१८ जीवन भर वियोग में जिसके, लोचन नीर बहाया करते	४४
१६ जीवन का आधार पा गई	४६
२० जाने क्या-क्या है छुपा हुआ, हे प्राण ! तुम्हारी काया में	४७
२१ पास ही समझो मुझे तुम, प्रिय ! न तुमसे दूर हूँ मैं	४६
२२ ओ सौरभ के सुरभित सुन्दर	५०
२३ याद वह क्षण आ रहे हैं	५२
२४ युग-परिवर्तन के साथ-साथ, मम जीवन के दिन बीत रहे	५४
२५ लौ मेरी हो, दीप तुम्हारा	५५
२६ भौतिकता के बंधन में बँध साथी, मन के मीत न त्यागो	५७
२७ मैं तुम्हारे ही बताये मार्ग पर अब चल रहा हूँ	५६
२८ यह न सम्भव है कि मैं जपता रहूँ, तुम भूल जाओ	६१
२६ कैसे मुसकाऊँ मैं रानी, जब नयनों में घन घिर आये	६२
३० मानव वही कि जिसको पाकर, मानवता कुछ शान्ति पा सके	६३
३१ मौन हैं उद्गार मेरे	६५
३२ मैं तुम्हारी याद को अब भूल जाना चाहता हूँ	६७
३३ क्यों न दुख के गीत गाऊँ	६८
३४ यह नहीं सम्भव कि मेरा प्यार रोता ही रहेगा	६६
३५ मेरी निर्ममता ने तुमको, बना दिया है आज भिखारी	७१
३६ मैंने तुमको दुख पहुँचाया क्षण भर को अब रो लेने दो	७२
३७ देख मन्द हँसन किसी की, याद आ जाती तुम्हारी	७४
३८ सजनि ! इस मधु-हास में, यह वेदना का स्वर मिला लो	७६
३६ कवि ! विरह-वेदना के स्वर से तू अपना कम्पित गान न कर	७८
४० बहुत दिनों के बाद तुम्हारी याद मुझे फिर सता रही है	८०
४१ भर आये रतनारे नयना, जब न मिला सन्देश तुम्हारा	८२

गीत की प्रथम पंक्ति	पृष्ठ
४२ तुम्हारे प्यार का सचमुच, न मैं कुछ भार ले पाया	८४
४३ आज स्वप्न में देख तुम्हें फिर, सोई सुधियाँ जाग उठी हैं	८६
४४ मैं समझ नहीं पाया अब तक, आखिर तुम माँग रहे हो क्या	८७
४५ नयनों के कजरारे घन क्यों, बरसाते हैं मोती रानी	८६

राष्ट्रीय-गीत

४६ याद रखना राग भैरव, पथिक ! पथ मत भूल जाना	६३
४७ पंथी आ रहा, निर्भय साज सजाये	६६
४८ आज जहाँ में सब से प्यारा है 'जयहिन्द' हमारा नारा	६८
४६ फिर भी दुनियाँ ने लहराते, इस वीर तिरंगे को देखा	१०१
५० प्रति क्षण नूतन प्रति पल मनहर, दीपक युग-युग जले हमारा	१०४
५१ लहरता चला आ रहा है सदा से लहरता रहेगा तिरंगा हमारा	१०५
५२ मुक्ति का सन्देश लेकर आ रही जगमग दिवाली	१०६
५३ चमक रहा है पैसे वाला	१०८
५४ जो मातृभूमि पर बलि होकर, जननी के सुत जायेंगे	१११

गीत मैं कैसे लिखूँ . . .

१

गीत मैं कैसे लिखूं, जब प्रीति में मन रँग रहा है ?

उठ रहा तूफ़ान उर में, कल्पना क्या पास आयें ?
मच रहा घमसान हो तब, ओंठ कैसे मुस्कुरायें ?
जग मुझे पागल कहे, हँसता रहे, पर आज तुमसे—
दूर कैसे हो सकेगा, जब कि यह तन सँग रहा है ?

गीत मैं कैसे लिखूं, जब प्रीति में मन रँग रहा है ?

देखता हूँ, आज नन्दन को सुखा देगी निराशा !
कोसती मुझको रहेगी, युगों तक उसकी पिपासा॥
चाहता है तृप्ति मुझसे, किन्तु तुमको छोड़कर प्रिय !
नीर कैसे दूँ उसे, जब सीप में घन टँग रहा है ?

गीत मैं कैसे लिखूं, जब प्रीति में मन रँग रहा है ?

मैं पथिक उस पंथ का हूँ, लौटता है जो न बढ़ कर।
मात्र सरसिज के लिए, जीवित रहा मेरा भ्रमर-वर॥
है निठुर जग, किसलिए फिर तान उसको भी सुनाऊँ !
जब कि उसका प्राण लेने का प्रिये, बन ढंग रहा है !

गीत मैं कैसे लिखूं, जब प्रीति में मन रँग रहा है ?

२

सचमुच जीवन की प्याली में, यौवन का मधु सुधा-विन्दु है ।

नयनों के कजरारे घन में
रूपसि ! अंकित है चपला-सी,
हृदय-कमल में शोभित है वह–
अभिमत - बरदायनि वरदासी,
भुज-पाशों का कोमल बन्धन
अणु-अणु की कसकन को खोता,

चञ्चल नयनों की सीमा में, प्रिय-दर्शन निस्सीम-सिन्धु है ।
सचमुच जीवन की प्याली में, यौवन का मधु सुधा-विन्दु है ॥

रिमझिम-रिमझिम नेहभरे घन
सिंचित करते हैं उर-उपवन,
थिर-थिर उठते हैं आ-आकर–
अरुणिम अधरों पर मृदु-कम्पन;
रुनझुन-रुनझुन पायल के स्वर
नीरवता खोते कण-कण के,

प्यार भरे यौवन-सागर के, प्रेयसि का मुख शरद्-इन्दु है ।
सचमुच जीवन की प्याली में, यौवन का मधु सुधा-बिन्दु है ॥

चमक रही है बाल सूर्य-सी
मस्तक पर ईंगुर की बिंदिया,
छाई नींद भरी बदरी-सी
कजरारे नयनों में निंदिया,
छिटक रही है शुभ्र चाँदनी-सी-
मुस्कान सजल ओठों पर,

पंकज शोभित मानस-उर में, बंकिम-चितवन कुमुद-बन्धु है ।
सचमुच जीवन की प्याली में, यौवन का मधु सुधा-बिन्दु है ॥

३

कहती है मुस्कान तुम्हारी–'यौवन का मधुपान किये जा !'

'यद्यपि मैं जीवन से पीड़ित, करता हूँ आह्वान प्रलय का;
पीड़ा की अँगड़ाई को तज, ज्ञान नहीं है किसी विषय का;
पर तुम अमृत-कलश हाथ ले, मृत्यु-मार्ग अवरुद्ध कर रहीं;

कहतीं भवें कमान तुम्हारी–'पागल ! कुछ दिन और जिये जा !'
कहती है मुस्कान तुम्हारी–'यौवन का मधुपान किये जा !!'

क्या तुमने पढ़ली है सचमुच, मेरे अन्तर की अभिलाषा ?
क्या सचमुच तुम शान्त कर सकोगी जीवन की अमर पिपासा ?
अरमानों के सूखे उपवन में तन्त्री के तार हिलाकर–

कहती है मधु-तान तुम्हारी–'ले दो प्याली और पिये जा !'
कहती है मुस्कान तुम्हारी–'यौवन का मधु-पान किये जा !!'

जीवन और जवानी का संघर्ष निरन्तर ही चलता है;
दुख-किरणों से हृदय-हिमालय स्वयं चिरन्तन ही गलता है;
श्रान्त पथिक को नन्दनवन-सी, अक्षय सुषमा लिये संग में;

कहती हैं गुंजान तुम्हारी–'स्वर पर मधु आलाप दिये जा !'
कहती है मुस्कान तुम्हारी–'यौवन का मधुपान किये जा !!'

४

प्यार तुम्हारा पाकर मुझको, सचमुच ही अभिमान हो गया।

अब तक मैं उन्मुक्त विहग था,
जिधर चाहता उड़ जाता था।
अब तक मैं पथ-भ्रान्त पथिक था,
जिधर चाहता मुड़ जाता था॥

सार तुम्हारा गा कर मुझको, अपने पन का ज्ञान हो गया।
प्यार तुम्हारा पाकर मुझको, सचमुच ही अभिमान हो गया॥

अब तक मेरे कवि की भाषा,
बिखरे भावों को लाती थी।
अब तक मेरे गायक की ध्वनि,
सिहरे गीतों को गाती थी ॥

तार तुम्हारा पाकर मुझको, स्वर-लहरी का ध्यान हो गया।
प्यार तुम्हारा पाकर मुझको, सचमुच ही अभिमान हो गया.॥

अब तक मैंने मधु-स्वप्नों को,
प्रियतम ! रक्खा सदा छिपाये।
अब तक मेरा जीवन-सागर,
शान्त पड़ा था आह दबाये ॥

ज्वार तुम्हारा पाकर मुझको, आकर्षक आह्वान हो गया।
प्यार तुम्हारा पाकर मुझको, सचमुच ही अभिमान हो गया ॥

अब तक मैंने सदा सँजोई–
थीं, अपने आँसू की लड़ियाँ।
अब तक एकाकी ही बीती–
हैं, मेरे जीवन की घड़ियाँ ॥

भार तुम्हारा पाकर मुझको, निज गुरुता का भान हो गया।
प्यार तुम्हारा पाकर मुझको, सचमुच ही अभिमान हो गया ॥

५

आ गई दीपावली सखि, प्यार के दीपक जलालो !

चिर-दिनों से थे प्रतीक्षा में विकल जो नयन-चंचल,
आज पाने जा रहे हैं, वे किसी का स्नेह-सम्बल;
यह मिलन की यामिनी, शृङ्गार सखि सोलह सजालो !
आ गई दीपावली सखि, प्यार के दीपक जलालो !!

दूर कर दो अब निरर्थक शुभ्र-मुख-शशि का मुखाञ्चल,
सघन-घन-घूंघट हटा, कर दो झलाझल हिय-हिमाञ्चल;
आवरण से हीन हो तुम, आवरण निष्फल हटालो !
आ गई दीपावली सखि, प्यार के दीपक जलालो !!

चिर-दिनों की साध का यह आज रूपसि, फल मिला है,
पिय-मिलन-दिनकर-निकर कर याद, हत-पंकज खिला है;
आ रहे प्रिय, पंथ में सखि, नलिन-नयनो को बिछालो !
आ गई दीपावली सखि, प्यार के दीपक जलालो !!

तृषित अभिलाषा न अब, रह पाय कोई एक उर में,
प्रणय के मधु-गीत को गाना परस्पर एक स्वर में;
दग्ध-उर शीतल करो, जा हृदय से उनको लगालो !
आ गई दीपावली सखि, प्यार के दीपक जलालो !!

६

मैं तूफानों से डरा नहीं, पा तेरे नयनों का सम्बल !

आँखों के सम्मुख नाच उठा,
स्वर्णिम भविष्य ले अन्धकार;
जग ने मेरा संग छोड़ दिया,
धिक्कार सुनाकर बार-बार;

पर मैं किञ्चित भी झुका नहीं, प्रतिकूल हुए मुझसे जल-थल !
मैं तूफानों से डरा नहीं, पा तेरे नयनों का सम्बल !!

है प्रेम महा-दुख का कारण,
औ मिलन-वियोग दिखाता है;
इन मधुर-क्षणों का हँसना ही,
युग-युग पर्यन्त रुलाता है;

सब कुछ सोचा, पर गिरा नहीं, बन गया ध्येय ऐसा अविचल !
मैं तूफानों से डरा नहीं, पा तेरे नयनों का सम्बल !!

माना यह जग क्षण-भंगुर है,
पल-पल पर रंग दिखाता है;
इसके रंग में रंगने वाला,
मिटते-मिटते मिट जाता है;

पर मैं यूँ ठिठका तनिक नहीं—'मिटना ही है तो क्यों लूं कल !'
मैं तूफानों से डरा नहीं, पा तेरे नयनों का सम्बल !!

'यौवन, सौन्दर्य चन्द दिन तक—
ठहरेगा, फिर ढल जायेगा'
मैंने सोचा—फिर त्यागूं क्यों,
बीते फिर हाथ न आयेगा;

मैं प्यासा हूँ, दो तृप्ति मुझे, प्रिय ! युग-युग से लगते हैं पल !
मैं तूफानों से डरा नहीं, पा तेरे नयनों का सम्बल !!

७

प्यास बुझाने को जीवन की, प्याली बनकर जिऐं झरोखे !
ढुलक रहा यौवन का अमृत, प्रेमी बन कर पिऐं झरोखे !!

इन नन्हे - नन्हे छेदों की—
आड़ किए आँखें कुछ पातीं;
देने को सन्देश उभय दिशि,
वायु चल रही है शरमाती;

दोनों ओर चपल चितवन है, दोनों दिशि अधरों पर कम्पन—
क्षत-विक्षप्त दोनों हृदयों को, सूची बन कर सिऐं झरोखे !
ढुलक रहा यौवन का अमृत, प्रेमी बन कर पिऐं झरोखे !!

हाँ रानी, हम-तुम दोनों ही,
जग से दूर यहाँ मिलते हैं;
वाह्य देश में मुरझाए से,
इस अन्तर - पट में खिलते हैं;

यहाँ नहीं दुख, यहाँ नहीं भय, नहीं प्रकट होने की चिन्ता!
अपनी सुख-सुविधा के समुचित, सब प्रबन्ध हैं किए झरोखे !
ढुलक रहा यौवन का अमृत, प्रेमी बन कर पिएँ झरोखे !!

रक्षा किए हुए आँखों की,
जैसे रहतीं हैं ये पलकें;
ज्यों प्रकाश को छिपा अंक में,
करतीं गुप्त, निशा की अलकें;

थल की और चपल-चपला की, आशाएँ ज्यों निहित जलद में—
त्यों अपनी अभिलाषाओं की, बागडोर हैं लिए झरोखे !
ढुलक रहा यौवन का अमृत, प्रेमी बन कर पिएँ झरोखें !!

८

अश्रु-कण में निहित, उर का प्रिय ! मदिर-अभिसार मिलता !!

प्रेम की अनुभूति में,
आभास मिलता वेदना का;
स्वप्नवत् संसार सारा—
नष्ट होता, कल्पना का;
हृदय-तन्त्री भी, निराशा के—
स्वरों में गूंजती है;
और वह मधुमास की कोकिल,
शिशिर में कूंजती है;

प्यार के उपहार में प्रिय ! मौन-चिन्तन-भार मिलता !
अश्रु-कण में निहित, उर का प्रिय ! मदिर-अभिमार मिलता !!

जब क्षितिज के वक्ष पर,
छाती सिमिट पावस घटाएँ;
जब शिशिर की रात,
भरती शून्य में दुख-मय कराहें;
जब पपीहा के स्वरों से,
व्यथित हो जाता सघन-बन;
जब भ्रमर के गीत में हो,
वेदना का मृदुल - क्रन्दन;

भूल यौवन के दिनों की का, प्रिय ! तब 'सार' मिलता !
अश्रु-कण में निहित, उर का प्रिय ! मदिर-अभिसार मिलता !!

सुरभि में ही मुस्कुराती,
ज्योत्सना छिटकी गगन में;
मधु - मिलन की पूर्णिमा में,
हो चकोरी मुदित मन में;
प्रणय के माधुर्य को,
जब अवनि अम्बर गा रहे हों;
किन्तु उर के घाव अपने,
हूक भर-भर ला रहे हों;

तब निहित चिर-वेदना में, 'प्यार का व्यापार' मिलता !
अश्रु-कण में निहित, उर का प्रिय ! मदिर-अभिसार मिलता !!

९

थ। वह मृदु-मुस्कान विजयिनी ! पर मुझको बन गई दुधारी !

अरुण-अधर पर नाच रही थी,
यौवन की अप्सरा नवेली ।
नागिन सी लहराती कटि तक,
सुमन - ग्रथित वेणी अलबेली ॥
क्या मैं भूल सकूंगा रूपसि !
मादक भ्रू - भंगिमा तुम्हारी ?

थी वह मृदु-मुस्कान विजयिनी ! पर मुझको बन गई दुधारी !!

पी कर अरमानों की हाला,
जब मैं आया द्वार तुम्हारे ।
बरवस एक साथ ही क्यों तब,
मिले परस्पर नयन हमारे ?
कैसे आज भुला दूं सजनी !
वह मादक रजनी अँधियारी ?

थी वह मृदु-मुस्कान विजयिनी ! पर मुझको बन गई दुधारी !!

धड़क रहे दो हृदय परस्पर,
मिलने को बेला आई थी ।
आलिंगन को बढ़ीं भुजाऐं,
आशा ने ली अँगड़ाई थी ॥
रानी ! उसी समय क्यों आई,
वह वियोग की झंझा भारी ?

थी वह मृदु-मुस्कान विजयिनी ! पर मुझको बन गई दुधारी !!

जिसे स्वप्न मैं समझ रहा था,
क्या वह थी काल्पनिक कहानी ?
प्यास बुझानी चाही जिससे,
क्या था, ओस विन्दु का पानी ?
सघन विपिन जिसको समझे था,
क्या वह थी उजड़ी फुलवारी ?

थी वह मृदु-मुस्कान विजयिनी ! पर मुझको बन गई दुधारी !!

१०

मैं तुम्हारी प्रीति को पहिचानता हूँ, पर करूँ क्या ?

काश, यदि मेरी विवशता-को—
कभी तुम जान पातीं ।
काश, यदि मेरे दृगों की—
धार, तुम तक पहुँच पाती ॥
हार मेरी का, तुम्हें तब—
ज्ञान हो जाता सलोनी !

मैं तुम्हारी जीत को पहिचानता हूँ, पर करूँ क्या ?
मैं तुम्हारी प्रीति को पहिचानता हूँ, पर करूँ क्या ?

सत्य है 'युग के सदृश जब–
बीततीं घड़ियाँ तुम्हारी।'
सत्य है 'बिखरी हुई हैं–
प्यार की लड़ियाँ तुम्हारी ॥'
तुम सुकोमल हो, तुम्हें–
झुलसा रही विरहाग्नि होगी।

मैं तुम्हारी रीति को पहिचानता हूँ, पर करूँ क्या ?
मैं तुम्हारी प्रीति को पहिचानता हूँ' पर करूँ क्या ?

मैं यहाँ हूँ बन्धनों में,
देखती तुम राहह होगी।
'शीघ्र ही हो मदु-मिलन अब,'
यह तूम्हारी चाह होगी ॥
पर मुझे कारा-जगत की,
एक पग बढ़ने न देगी–

मैं तुम्हारी नीति को पहिचानता हूँ, पर करूँ क्या ?
मे तुम्हारी प्रीति को पहिचानता हूँ, पर करूँ क्या ?

११

तुम मुझको अपना ही जानो !!

एक बार जब हाथ मिल गये, तो फिर छूट नहीं पायेंगे;
एक बार जब हृदय मिल गये, तो फिर टूट नहीं पायेंगे;
मेरे इन गीतों की लय में, स्वर तुम अपना ही पहिचानो !
तुम मुझको अपना ही जानो !!

तन से दूर रहें जितने भी, मन से दूर कभी ना होंगे;
युग-युग से जो गये सँजोये, सपने चूर कभी ना होंगे;
मेरे अलसाये नयनों में, छवि तुम अपनी ही अनुमानो !
तुम मुझको अपना ही जानो !!

साथ रहे युग-युग तक साथी ! सम्बोधन की समझ महत्ता;
विचलित हमें न कर पायेगी, अपने पथ से कोई सत्ता;
मेरी इस जर्जर काया में, प्राण तुम्हारे ही हैं मानो !
तुम मुझको अपना ही जानो !!

मैं वह दीप नहीं हूँ, जिसमें 'बलि' की प्यास जला करती है;
मैं वह मीत नहीं हूँ, जिसकी वाणी सदा छला करती है;
मेरे भावों के मयङ्क को, स्वार्थ पङ्क में व्यर्थ न सानो !
तुम मुझको अपना ही जानो !!

१२

बड़ी देर का प्यासा,
प्रीतम !
बड़ी देर का प्यासा ।।
जर्जर तन है,
जर्जर मन है, बड़ी देर का प्यासा ।।

बहुत दिनों तक हुई प्रतीक्षा,
कब तक लोगी प्रेम-परीक्षा;
जीवन का अब अन्त निकट है,
देखो नहीं तमाशा । बड़ी देर का प्यासा ।।

आंखें बरसाती हैं पानी,
तड़प रही बेहोश जवानी;
आश लगाकर मैं आया हूँ,
देना नहीं निराशा । बड़ी देर का प्यासा ।।

मैं चल दूँ तुम दो न सहारा,
तो यह करना कहा हमारा;
शव पर ही दो अश्रु गिराना,
होगी तृप्त पिपासा । बड़ी देर का प्यासा ।।

१३

दूर मत समझो मुझे प्रिय ! मैं तुम्हारे पास ही हूँ ॥

सत्य है यह, जाग उठती हैं कभी सोई व्यथाएँ ।
नीर बरसाते नयन हैं, याद कर पिछली कथाएँ ॥
हूक उठती है हृदय में, तिलमिला जाती जवानी ।
भास होती उस समय है, झूठ दुनियाँ की कहानी ॥
जानकर इन व्यर्थ बातों को, तुम्हें क्या लाभ होगा ?
मैं कहूँगा तो हृदय में, और गहरा घाव होगा ॥

भूलकर जग को, तुम्हारे हेतु अब मृदु हास ही हूँ ।
दूर मत समझो मुझे प्रिय ! मैं तुम्हारे पास ही हूँ ॥

चाहता हूँ अब सदा को, हृदय से तुमको लगा लूँ ।
पा तुम्हारा स्नेह-सम्बल, दुख सभी पिछला भुला लूँ ॥
तुम बढ़ा निज हाथ, इसको कर रहीं स्वीकार रानी ।
मुझ तृषित को और इससे क्या अधिक होगा सयानी ?
कौनसे शुभ कृत्य का, यह फल न जानें मिल रहा है ?
एक युगका शुष्क-उपवन, पा सुरभि को खिल रहा है ?

अब तुम्हारे उर-भवन का देवि ! मंजु प्रकाश ही हूँ ।
दूर मत समझो मुझे प्रिय ! मैं तुम्हारे पास ही हूँ ॥

१४

है प्रबल आशीष कवि की, साधमय साधन रहेगा !

शान्त-जीवन सिन्धु में जब,
दो लहरियाँ आ मिलेंगी
कामनाओं के विजन में,
तब प्रणय-कलियाँ खिलेंगी;
माँग के सिन्दूर में—
अपने हृदय का नेह भर कर,
वन्दना में सुप्त आँखों से,
सजल आँखें कहेंगी—

ओ थके-हारे पथिक ! मार्ग में यौवन रहेगा !
है प्रबल आशीष कवि की, साधमय साधन रहेगा !!

यह नियम का क्रम प्रबल है
चाह पूरी सब न होती,
मुस्कुराते जब अधर–
तब आँख से आँसू पिरोती;
किंतु मानव-शक्ति उससे–
भी प्रबल हम मानते हैं,
जो कि है मरु-भूमि में भी,
उर्वरा के बीज बोती;
यह अमर विश्वास कहता, प्राणमय जीवन रहेगा !
है प्रबल आशीष कवि की, साधमय साधन रहेगा !!

विश्व परिवर्तन भरा हो,
तो क्यों न परिवर्तन कभी हो ?
मानसूनी वायु में भी,
क्यों न घन-गर्जन कभी हो ?
सान्त्वना को प्राप्त कर,
जब मुस्कुरायेगी मयूरी;
तो सदैव मयूर का भी,
क्यों न मधु-नर्तन कभी हो ?
चरण में होगी प्रगति, औ प्रकृति में स्यन्दन रहेगा !
है प्रबल आशीष कवि की, साधमय साधन रहेगा !!

१५

क्यों मुझसे नेह बढ़ाती हो ?

तुम श्याम घटा बन कर नभ में ।
मेरे इस सूखे उपवन में ॥

क्यों रह-रह जल बरसाती हो ?
क्यों मुझसे नेह बढ़ाती हो ?

तुम शशि की भीनी पूनों में ।
मुरझाए प्रणय - प्रसूनों में ।।

क्यों ज्योति बनी लहराती हो ?
क्यों मुझसे नेह बढ़ाती हो ?

हो जिसकी गुजर लकुटिया में ।
उस विरह-दुखी की कुटिया में ।।

क्यों सुधि के दीप जलाती हो ?
क्यों मुझसे नेह बढ़ाती हो ?

तुम बिना विचारे ही रानी !
करती हो अपनी मनमानी ।।

क्यों साथ निभाती जाती हो ?
क्यों सुधि के दीप जलाती हो ?

१६

आसव की दो लघु बूंदों पर, मै प्यार सजाये बैठा हूं ।
कोई आजाये इस पथ पर, मैं दीप जलाये बैठा हूं ॥

सौन्दर्य - भवन में ही मेरे,
यौवन का दीप जला करता;
नयनों की मृदु-मादकता में,
भावों का प्यार पला करता;
सागर की शीतल छाती में,
दिन - रात दहकते अँगारे;

नयनों के तम में तारों का, संसार सजाये बैठा हूं ।
कोई आ जाये इस पथ पर, मैं दीप जलाये बैठा हूं ॥

तुम नहीं मिले, युग बीत गया,
पर याद तुम्हारी बाकी है;
दुनियाँ के सूने मरघट पर,
जल रहा स्वयं एकाकी है;
श्वासों के झोंके से जीवन–
दीपक की लौ टिमटिमा रही;

तुम आकर ज्योति बुझा जाओ, मैं आश लगाये बैठा हूँ ।
कोई आ जाये इस पथ पर, मैं दीप जलाये बैठा हूँ ॥

यों तो आते हैं लाख - लाख,
यह ज्योति बुझाने परवाने;
जलता हूँ किसकी याद लिये,
यह जान न पाते दीवाने;
धोखा खाया, जल गये स्वयं,
वे रूप सुधा के मदमाते;

मैं कोटि-कोटि बलिदानों का, गुरु-भार उठाये बैठा हूँ ।
कोई आ जाये इस पथ पर, मैं दीप जलाये बैठा हूँ ॥

१७

पा न सकूँ प्रतिदान तुम्हारा, ऐसा तो विश्वास नहीं है।

कौन क्षितिज के वातायन से झाँक रहा मेरे जीवन में,
धूमिल स्मृतियों की रेखा से आँसू उलझे युगल नयन में।
मेरे सपनों में सूनापन, उनके नयनों में खारा जल,
जीवन की किस परिभाषा में, अभिशापों का शुष्क मरुस्थल।

करुणा का सागर आँखों में, अंचल में सोता सूनापन।
नीरव नयनों की भाषा में, जीवन का अविकल पागलपन।
पा न सकूँ प्रतिदान तुम्हारा, ऐसा तो विश्वास नहीं है।
हो न सके मनुहार किसी का, इतना तो आभास नहीं है।

कौन अभीप्सित सागर छूकर धुल जावेंगे शाप किसी के,
विश्वासों के उच्छ्वासों में जल जावेंगे पाप किसी के।
यौवन के सुन्दरतम सपने सबके सब अव्यक्त तुम्हीं से,
कितनी अन्तर की साधें प्रतिपल रहती हैं सिक्त तुम्हीं से।

काले रेशम की बदली में स्वर्गिक सुषमा से अवगुण्ठित,
सुरभित प्रेम प्रसून तुम्हारे, चरणों में श्रद्धामय अर्पित।
मेरे मन्दिर में तुम पूजन-साधन भी आराध्य तुम्हीं हो,
नयनों का नीरव आराधन, आँसू का सुविकास नहीं है।

१८

जीवन भर वियोग में जिसके, लोचन नीर बहाया करते !
हाय, उसी परदेशी को सब, हृदय-हीन बतलाया करते !!

है यह नियम प्रकृति का सबने रहकर पास भुलाया प्रियतम,
नित्य प्राप्य को नहीं आज तक, सचमुच माना गया मधुरतम;
अमर-प्रेम का लघु-अंकुर भी, नहीं पड़ौसी में दीखा है,
युग-युग तक सम्बन्ध निभाना परदेशी ने ही सीखा है;
उन प्रत्येक क्षणों में, जिनमें कार्य-व्यस्त हो गया पड़ौसी—
गीत विरह के परदेशी के अधरों पर मुस्काया करते !

जीवन भर वियोग में जिसके, लोचन नीर बहाया करते !
हाय, उसी परदेशी को सब हृदय-हीन बतलाया करते !!

आकर्षण की केन्द्र सदा से बनी चली आई है नारी,
प्रायः पुरुष स्वयं बनता है, जिसके सम्मुख दीन-भिखारी;
पर मैं कटु-अनुभव के बल पर, यही जान पाया हूँ अब तक,
हृदयहीन वह शान्ति न पाती, हँसता रहता प्रेमी जब तक;
इसको प्रेमी की आंखों में आँसू देख महासुख मिलता—
तभी विचारे परदेशी को स्मृति के हीर सताया करते !

जीवन भर वियोग में जिसके, लोचन नीर बहाया करते !
हाय, उसी परदेशी को सब हृदय-हीन बतलाया करते !!

सचमुच वस्तु अलभ्य बड़ी है और बड़ा है उसका साधक,
वह छोटा है—जिसे प्राप्त करने में कोई हुआ न बाधक;
सागर की महानता ही क्या, जिसने भरी अंक में सरिता,
उच्च मानती है हिमगिरि को, उससे बढ़कर मेरी कविता;
रूठी हुई प्रेयसी को भी, जिसके लोचन नीर बहाकर,
यौवन उन्मादित करने को, है जलपूर्ण बनाया करते !

जीवन भर वियोग में जिसके लोचन नीर बहाया करते !
हाय, उसी परदेशी को सब हृदय-हीन बतलाया करते !!

१९

जीवन का आधार पा गई !
याद तुम्हारी मेरे उर में रहने का अधिकार पा गई !!

सचमुच थी प्राणों में सिहरन;
अधरों पर मृदु - मादक कम्पन;
पाकर जीवन-धन की चितवन;
दूर हुआ युग-युग का क्रन्दन;

नयनों के कजरारे घन से, उर-उरवी रसधार पा गई !
जीवन का आधार पा गई !!

युग - युग से व्याकुल था जिससे,
नहीं रही वह तनिक पिपासा;
आशा में परिणित है मेरी,
सदियों की अतृप्त निराशा;

आज हृदय-तन्त्री तव दर्शन की मादक झंकार पा गई !
जीवन का आधार पा गई !!

२०

जाने क्या-क्या है छुपा हुआ, हे प्राण ! तुम्हारी काया में ?

क्षण भर को मुख-शशि का वियोग,
करता है आकुल प्राणों को;
भरते हैं दृग मृग सी छलाँग,
तव देख-देख भ्रू-बाणों को;

झर रहा कपोलों पर निर्झर, लेकिन बुझती है प्यास नहीं,
विश्राम ले रहा पथिक हृदय, शीतल नयनों की छाया में !
जाने क्या-क्या है छुपा हुआ······

हो गये ग्रीष्म के स्वप्न लीन,
मधुमास निरखता आता है;
मानस - सरोज का मधु - पराग,
चहुँ ओर बिखरता जाता है;

छा रहीं लताऐं वृक्षों पर, कोकिल पंचम में कूक उठी,
जल, थल, नभ बँधे हुए-से हैं, मुस्कान छली की माया में !
जाने क्या-क्या है छुपा हुआ……

जीवन - सरिता में एक साथ,
अब तो प्रिय ! क्षणभर को बहलो;
कुछ तुम्हें सुनाऊँगा अपनी,
कुछ तुम अपनी मुझसे कह लो;

संयोग-वियोग लगा रहता, परिणाम विधाता के वश है,
जब तक हैं साथ मुझे रानी ! पलने दो अपनी साया में !
जाने क्या-क्या है छुपा हुआ……

२१

पास ही समझो मुझे तुम, प्रिय ! न तुमसे दूर हूँ मैं ।।

कुछ समस्याऐं जगत की;
जो मुझे बढ़ने न देतीं;
पर न यह समझो कि–
मनकी डोर पग को थाम लेती;

सत्य तो यह है कि तुममें ही हमेशा चूर हूँ मैं ।
पास ही समझो मुझे तुम, प्रिय ! न तुमसे दूर हूँ मैं ।।

मैं नहीं वह, जो कि–
देकर के वचन है भूल जाता;
वह भ्रमर भी मैं न जो,
रस पी, कली से दूर जाता;

मन तुम्हें देकर प्रिये ! अब तो, स्वयं मजबूर हूँ मैं ।
पास ही समझो मुझे तुम, प्रिय ! न तुमसे दूर हूँ मैं ।।

२२

ओ सौरभ के सुरभित सुन्दर,
सुषमा - रञ्जित फूल
अलि सा हृदय तुम्हें अर्पित है,
जाना इसे न भूल !

शुभ्र ज्योत्स्ना से पूरित जब,
हो रजनी छविमान !
जब अलापता हो शशि नभ में,
प्रणय - गीत की तान !!

तब उस निशि की मादकता में,
लेकर प्रेम - हिलोर !
हिलमिल कर बढ़ना पाने को,
तुम अनन्त का छोर !!

निहित हो रहा हो असीम में,
जब अन्तर का प्यार !
तव ससीम तुम रखना अपने,
जीवन का अधिकार !!

मानव का कर्त्तव्य न कोई,
रहने पाये मौन !
जग विस्मित सा स्वयं कह उठे,
'यह महान है कौन ?'

२३

याद वह क्षण आ रहे हैं !
जब तुम्हारी याद में, मैं–
श्वेत मोती से पिरोता,
कर प्रतीक्षा, फिर स्वयं के–
बीच ही चुपचाप खोता;
व्यथित होता, राह तकता,
दर्द-सा होता हृदय में,
हाय, फिर भी तुम न आतीं,
और मैं उद्विग्न होता;
याद वह क्षण आ रहे हैं !

पुण्य की जब थपकियां,
रंगीनियाँ साकार होतीं;
जब हमारी लालसाऐं,
एक नव जीवन सँजोतीं;
प्यार होता, मान होता,
रूठता, तुमको मनाता;
तुम थिर कर पास आतीं–
और मैं मदहोश होता;
याद वह क्षण आ रहे हैं !

प्यार की अनुभूतियाँ—
आगोश में आ गुदगुदातीं;
प्यार की ही रात आकर,
चिर-मिलन के गीत गाती;
स्वप्न बन-बन कर बिगड़ते;
आस की अरथी निकलती;
एक मीठी वेदना आ,
प्राण मेरे तड़फड़ाती;
याद वह क्षण आ रहे हैं!

व्योम में आ तारिकाएं,
झूमती - सी झिलमिलातीं;
चन्द्रमा की शीत किरणें,
अवनि आ कर चूम लेतीं;
हाय, उन मादक क्षणों में,
हृदय में उल्लास भर कर;
प्यार के उद्‌गार कहता,
और तुम मुख मोड़ लेतीं;
याद वह क्षण आ रहे हैं!

२४

युग-परिवर्तन के साथ-साथ,
मम-जीवन के दिन बीत रहे !!

सो कर अतीत के पलने में,
मैं भूल गया दुःख की घड़ियाँ;
अपने में खोया, किंतु मिलाता–
रहा विचारों की घड़ियाँ;
उनको भी भूला जो मेरे,
अन्तर में गहरे मीत रहे !

युग-परिवर्तन के साथ-साथ,
मम-जीवन के दिन बीत रहे !!

युग में उफान आया सहसा,
मेरे जीवन में ज्वार उठा;
अरुणाई आँखें लाल हुईं,
अन्तर में हाहाकार उठा;
फिर से ले आओ अधरों पर,
अब तक जो मधुमय गीत रहे !

युग-परिवर्तन के साथ-साथ,
मम-जीवन के दिन बीत रहे !!

२५

लो मेरी हो, दीप तुम्हारा,
जलने का सुन्दर उपक्रम है!

अथक भरा हम-तुम में श्रम है;
जग का हर पथ सूना है;
आओ, हम-तुम ज्योतित कर दें;

लो मेरी हो, दीप तुम्हारा,
जलने का सुन्दर उपक्रम है!

चेतनता में जड़ता कैसी ?
प्राणों में विह्वलता कैसी ?
स्वर मेरा, सङ्गीत तुम्हारा;

लो मेरी हो, दीप तुम्हारा,
जलने का सुन्दर उपक्रम है!

प्रिय, जग का कण-कण निःस्वन है;
आओ, हम-तुम मुखरित कर दें;
स्वर मेरा, संगीत तुम्हारा;

लौ मेरी हो, दीप तुम्हारा,
जलने का सुन्दर उपक्रम है!

शुष्क हो गया मधु का निर्झर;
शेष रहा जीवन में पतझर;
घन मेरा हो, नीर तुम्हारा;

लौ मेरी हो, दीप तुम्हारा,
जलने का सुन्दर उपक्रम है!

प्रिय, जग का कण-कण प्यासा है;
अणु-अणु की यह अभिलाषा है;
आओ हम-तुम सिंचित कर दें;

लौ मेरी हो, दीप तुम्हारा,
जलने का सुन्दर उपक्रम है!

२६

भौतिकता के बन्धन में बंध साथी ! मन के मीत न त्यागो !

रसमय बन जाती हों जिससे, यौवन की मदमाती घड़ियाँ,
जिस सनेह को पा जुड़ जाती हों, अमोल जीवन की कड़ियाँ;

निष्ठुर जग की इच्छाओं पर, तुम वह भाव पुनीत न त्यागो !
भौतिकता के बन्धन में बंध साथी ! मन के मीत न त्यागो !!

यही विश्व-क्रम आशा-सुमनों को है कभी न खिलने देता,
दोनों छोर प्रणय-सागर के, नहीं परस्पर मिलने देता;

पर तुम अमर-क्रान्ति के वाहक ! परिवर्तन की नीति न त्यागो !
भौतिकता के बन्धन में बँध साथी ! मन के मीत न त्यागो !!

विहँसेगा उर-कमल तनिक यदि, सावधान हो जाओगे तुम,
उठती शंकाओं का यदि कुछ समाधान कर पाओगे तुम;

ओ भावुक ! आवरणों में ढँक, भावुकता की नीति न त्यागो !
भौतिकता के बन्धन में बँध साथी ! मन के मीत न त्यागो !!

आग लगा दो इस लज्जा में, जोकि जलाती रहती क्षण-क्षण,
जिसमें बँधकर गला जा रहा, सत्य और सुन्दर का कण-कण;

शिवं स्वरूप भ्राति में फँसकर, चरम-शान्ति की रीति न त्यागो !
भौतिकता के बन्धन में बँध साथी ! मन के मीत न त्यागो !!

२७

मैं तुम्हारे ही बताये मार्ग पर-अब चल रहा हूँ !!

भूल अपनी ही प्रिये !
मैंने स्वयं स्वीकार करली;
जिन्दगी अपने करों से,
आप ही है भार करली;

मैं तुम्हारे ही विरह की आग में अब जल रहा हूँ !
मैं तुम्हारे ही बताये मार्ग पर अब चल रहा हूँ !!

तप्त हैं चारों - दिशायें,
बढ़ रही रवि की प्रखरता;
आ सकोगी तुम न मुझ तक,
चरण में भरकर मृदुलता;

मैं तुम्हारे ही लिए, हिम-खण्ड सा अब गल रहा हूँ !
मैं तुम्हारे ही बताये मार्ग पर अब चल रहा हूँ !!

यह कभी सम्भव नहीं,
क्षण के लिए तुमको भुला दूं;
आग अपने ही करो से,
प्राण ! जीवन में लगा दूं;

मैं तुम्हारे ही मिलन की आश में, अब पल रहा हूँ ।
मैं तुम्हारे ही बताये मार्ग पर अब चल रहा हूँ ॥

२८

यह न सम्भव है कि मै जपता रहूँ, तुम भूल जाओ !

क्योंकि यदि मुस्कान मंजुल मैं तुम्हारी ले चुका हूँ,
तो हृदय का प्यार भी तुमको सुनयने ! दे चुका हूँ,
एक क्षण का वह मिलन केवल न मुझको ज्वाल होगा,
यह न सम्भव है कि मै रोता रहूँ तुम मुस्कुराओ !

यह न सम्भव है कि मैं जपता रहूँ, तुम भूल जाओ !!

स्वप्न के जग का सृजन होता सदा है दो करों से,
स्नेह का सम्बन्ध बँधता ही सदा है दो घरों से;
आज यह निर्माण यदि विध्वन्स होकर गिर पड़ा है–
तो न यह सम्भव कि मैं आहें भरूँ तुम गीत गाओ !

यह न सम्भव है कि मैं जपता रहूँ, तुम भूल जाओ !!

इस जगत से दूर वह अपना बसा है विश्व सुन्दर,
खिल रहे हैं कामनाओं के जहाँ पर पुष्प सुन्दर,
साथ रहने की प्रतिज्ञा जब कि हम तुम कर चुके हैं;
तो न यह संभव कि मैं आगे बढ़ूँ तुम लौट जाओ !

यह न सम्भव है कि मैं जपता रहूँ, तुम भूल जाओ !!

२९

कैसे मुसकाऊँ मैं रानी ! जब नयनों में घन घिर आये ?

कोकिल कहाँ करे अभिनन्दन ?
जब पतझरमय है नन्दन वन ॥

हो कैसे निर्माण सलोनी ? जब कि प्रलय के क्षण फिर आये ?
कैसे मुसकाऊँ मैं रानो ! जब नयनों में घन घिर आवे ?

बन्द हुई पायल की रुन झुन ।
शेष नहीं अन्तर में सिहरन ॥

कैसे होगा मिलन प्रियतमे ! जब कि विरह के दिन फिर आये ?

लेकर स्मृति का ही अवलम्बन ।
मैं काटूँगा पीड़ा के क्षण ॥

खेद न करना किन्तु सुनयने ! यद्यपि साथ नहीं तिर पाये ।
कैसे मुसकाऊँ मैं रानो ! जब नयनों में घन घिर आये ॥

३०

मानव वही कि जिसको पाकर, मानवता कुछ शान्ति पा सके।

विश्व झूमने लगे ताल पर,
ऐसा आकर्षण हो गति में।
उदधि उमड़ता चले प्रेम का,
वह अमृत-वर्षण हो गति में।।
पद-पद में कर्त्तव्य प्रेरणा,
झलके तो हम यही कहेंगे—

'गायक वही कि जिसको पाकर, स्वर-लहरी कुछ कांति पा सके।
मानव वही कि जिसको पाकर, मानवता कुछ शान्ति पा सके।।

बैठ रूपसी के मन्दिर में,
प्रेम पुष्प जो रहा चढ़ाता।
किन्तु देश-हित विरह-गति भी,
जिसका भैरव-स्वर बन जाता।
उस निर्भीक कला-पूजक को,
हम क्या; दुनियाँ यही कहेगी–

'कवि है वही कि जिसको पाकर, कविता कुछ विश्रान्ति पा सके।'
मानव वही कि जिसको पाकर, मानवता कुछ शान्ति पा सके॥

जहाँ नहीं कोई भी करता,
कभी किसी से द्वेष कहीं है।
सब स्वतन्त्र हैं, जहाँ पाप का,
लेश मात्र भी शेष नहीं है॥
जहाँ शान्ति है उसे देख कर,
हृदय यही कहता है सचमुच–

'पथ है वही कि जिस पर चलकर, कोई कभी न भ्रान्ति पा सके।'
मानव वही कि जिसको पाकर, मानवता कुछ शान्ति पा सके॥

३१

मौन हैं उद्गार मेरे !!

उस प्रथम दिन की मधुर-मुस्कान, जब जब याद आती !
घन-घटायें घिर हृदय में, वेदना जब छोड़ जाती !!
अश्रु, बरसा नयन करते स्पष्ट हाहाकार मेरे !
मौन हैं उद्गार मेरे !!

प्रिय ! तुम्हें हो याद शायद; जब कहा मैंने–'कहो तो ?'
और तब तुम खीझ बोली प्यार से—'चुप भी रहो तो ॥'
आह, तब क्या जान पाया, हैं यही अभिसार मेरे !
मौन हैं उद्‌गार !!

था न इसका ज्ञान प्रिय ! तब, इस तरह हम छूट जायें ।
कल्पना की मंजु - लड़ियाँ, इस तरह से टूट जायें ॥
हृदय - तन्त्री के निराशा से भरे हैं तार मेरे !
मौन हैं उद्‌गार मेरे !!

दूर जाकर तुम बसी हो, क्या कभी है याद आती ?
सच बताना प्रिय ! तुम्हारी हूक भर लाती न छाती ?
भूल जाओ तुम भले ही, पर न मिथ्या प्यार मेरे !
मौन हैं उद्‌गार मेरे !!

जा रहीं तुम तो चली जाओ, न देखो भूल जाना !
हृदय - सागर ले हिलोरें, तब घटा बन पास आना !!
यदि नहीं तो जग कहेगा—झूठ थे अधिकार मेरे !
मौन हैं उद्‌गार मेरे !!

३२

मैं तुम्हारी याद को अब भूल जाना चाहता हूँ !

जिन्दगी जिसने बना रक्खी, अरे उपहास अब तक,
उस असम्भव मधु-मिलन का प्रिय ! करूँ विश्वास कब तक ?

इस व्यथा को छोड़कर अब मुस्कुराना चाहता हूँ !
मैं तुम्हारी याद को अब भूल जाना चाहता हूँ ।।

नाव जीवन की रुकी, अब तक जवानी के किनारे,
एक माँझी के लिए, पर आज उसके चरण हारे,

अब स्वयं पतवार बन, मैं पार जाना चाहता हूँ !
मैं तुम्हारी याद को अब भूल जाना चाहता हूँ !!

तुम न आओगे कभी, मैं भी न आगे को बढ़ूँगा;
तुम हुए निश्चेष्ट, मैं इस विश्व से कब तक लड़ूँगा;

इसलिए मैं जीत को तज, हार जाना चाहता हूँ ।
मैं तुम्हारी याद को अब भूल जाना चाहता हूँ ।।

३३

क्यों न दुख के गीत गाऊँ ?

प्रिय ! नियति ने, निष्ठुरा ने, अब मुझे ठुकरा दिया है ।
प्रणय का मधु - स्वप्न, बरबस शोक नद में ढा दिया है ।।
इस दशा दमनीय पर मैं, क्यों न दो आँसू बहाऊँ ?
क्यों न दुख के गीत गाऊँ ?

उस प्रथम प्रथम दिन के मिलन की याद में उर रहा है ।
कल्पना की मंजु - घड़ियों के विरह में खो रहा है ।।
इस व्यथित की, मैं उमड़ती आह को क्योंकर दबाऊँ ?
क्यों न दुख के गीत गाऊँ ?

वायु के झोके अनेकों, क्षणिक जीवन तरि - हिलाते !
वज्र गिर - गिर कष्ट के, मधु स्वप्न मिट्टी में मिलाते !!
विकल प्राणों की दशा क्योंकर कहूँ, किसको सुनाऊँ ?
क्यों न दुख के गीत गाऊँ ?

३४

यह नहीं सम्भव कि मेरा प्यार रोता ही रहेगा !

जिन्दगी की नाव डगमग हो रही यद्यपि भंवर में,
यह प्रलय सी उर्मियाँ उठ, बन गईं बाधा डगर में;
पर न समझो प्रीति का पतवार सोता ही रहेगा !
यह नहीं सम्भव कि मेरा प्यार रोता ही रहेगा !!

थी सुधा जिन प्यालियों में, अब गरल उनमें भरा है,
स्नेह-सिंचित थी कभी, पर अब विरह-पीड़ित धरा है;
पर न यह निष्ठुर-नियति-व्यापार होता ही रहेगा !
यह नहीं सम्भव कि मेरा प्यार रोता ही रहेगा !!

तिलमिलाई हो न जो, अनुभव-रहित वह है जवानी,
पर न यह समझो कि इति होती यहीं मेरी कहानी;
यह न सच, उर अश्रुमाला को पिरोता ही रहेगा !
यह नहीं सम्भव कि मेरा प्यार रोता ही रहेगा !!

एक दिन होगा कि जब फिर से गगन-भू हिल उठेंगे,
दूर होगी निशि विरह की, मिलन-सरसिज खिल उठेंगे;
देखना है हास कब तक, प्यास ढोता ही रहेगा ?
यह नहीं सम्भव कि मेरा प्यार रोता ही रहेगा !!

३५

मेरी निर्ममता ने तुमको, बना दिया है आज भिखारी !

वे झूठे हैं और प्रपंची,
जो मुझको कहते हैं दानी;
मैं ईश्वर कब रहा ? अभी तक
बना हुआ प्रतिमा पाषाणी;

पूजन-अर्चन आज तुम्हारा, कैसे मैं स्वीकार करूँ प्रिय ?
बना देवता सचमुच झूठा, सच्चे तुम ही रहे पुजारी !

तुम प्यासे अरमानों को ले,
हृदय खोल मेरे ढिग आये;
प्राणों में मधुमय कम्पन था,
नयनों में सपने भरमाये;

मैंने तुम्हें शान्त करने, भावुक बन, आश्वासन दे डाला !
पर वह रही प्रतिज्ञा झूठी, सच्चे तुम्हीं रहे अविकारी !!

३६

मैंने तुमको दुख पहुँचाया, क्षण भर को अब रो लेने दो ।।

उस क्षण सचमुच ही यौवन में,
  अंधा सा बनता था रानी !
    उस क्षण सचमुच ही नयनों में,
      सूख गया था मेरे पानी ।।
        अपनी निर्ममता दृग - जल से,
          क्षण भर को अब धो लेने दो ।

मैंने तुमको दुख पहुँचाया, क्षण भर को अब रो लेने दो ।।

उस क्षण की पहिचान अचानक,
सचमुच ही तो बात बन गई।
उस क्षण की मुसकान अचानक,
सचमुच ही आघात बन गई॥
फूल स्वयं मैने ठुकराये,
कांटों पर अब सो लेने दो।

मैंने तुमको दुख पहुँचाया, क्षण भर को अब रो लेने दो॥

उस क्षण तुम वरदान बनीं थीं,
पर मैं तो अभिशाप लिए था।
उस क्षण तुम मुस्कान लिए थीं,
मैं सचमुच ही पाप लिए था॥
अपनी भूल स्वयं मैं समझूं,
भार व्यथा का ढो लेने दो।

मैंने तुमको दुख पहुँचाया, क्षण भर को अब रो लेने दो॥

३७

देख मन्द हँसन किसी की, याद आ जाती तुम्हारी ॥

इस निशा में प्राण ! तुमको,
चाहता हूँ—भूल जाऊँ।
इस व्यथा से अब न उर को,
चाहता हूँ—मैं दुखाऊँ ॥

देखकर चितवन किसी की, याद आ जाती तुम्हारी।
देख मन्द - हँसन किसी की, याद आ जाती तुम्हारी ॥

है पड़ा वह मार्ग सूना,
हम चले जिस पर कभी थे ।
है पड़ा वह बाग सूना,
हम खिले जिसमें कभी थे ।।

देखकर थिरकन किसी की, याद आ जाती तुम्हारी ।
देख मन्द हँसन किसी की, याद आ जाती तुम्हारी ।।

था भरा घट जो कि कल तक,
आज वह फूटा पड़ा है ।
जो रहा आधार कल तक,
आज वह टूटा पड़ा है ।।

कर श्रवण रुनझुन किसी की, याद आ जाती तुम्हारी ।
देखकर चितवन किसी की याद आ जाती तुम्हारी ।।

आज वीणा - तार टूटे,
प्रिय बचा ना शेष कोई ।
जागरित थी युग - युगों से,
स्वर लहर वह आज सोई ।।

कर श्रवण गुनगुन किसी की, याद आ जाती तुम्हारी ।
देखकर चितवन किसी की, याद आ जाती तुम्हारी ।।

३८

सजनि ! इस मधु-हास में, यह वेदना का स्वर मिलालो ॥

उस हमारे मधु - मिलन के, वे तुम्हारे दृग - अचंचल ।
मद भरा यौवन, मधुर मुस्कान, वह मुख का मुखांचल ॥
जब कहा मैंने—"प्रिये ! यह आवरण निष्फल हटालो ।
सजनि ! इस मधु-हास में०.........

तुम झुकीं, झिझकीं, तनिक सहमीं, कहा क्योंकर हटालूं ?
प्राण ! इन चंचल-दृगों को, किस तरह तुमसे मिलालूं ?
तब कहा मैंने—'हृदय में प्यार का दीपक जलालो।'
सजनि इस मधु-हास में०......

उन मधुर, स्वप्निल क्षणों को, मैं न रूपमि! जान पाया।
उस प्रणय के राग को मैं, चिर-दिनों तक गान पाया।।
दर्द तुमने ही दिया है, अब इसे तुम ही सँभालो।
सजनि ! इस मधु-हास में०......

अब बसीं तुम दूर जाकर, मैं तड़फता रह गया क्यों ?
मिलन के प्रेमाश्रुओं का जल, विरह में बह गया क्यों ?
विरह—वारिधि बढ़ रहा है, नयन-सम्बल दे बचालो।
सजनि इस मधु-हास में०......

प्राण यद्यपि दूर मुझसे, औ' रहा मैं मूर्ति केवल।
पर न जाने क्यों निकलती आह, यद्यपि मै अचंचल !
इस पहेली को बुझाने, हृदय से मुझको लगालो।
सजनि ! इस मधु-हास में०......

३९

कवि ! विरह्-वेदना के स्वर मे, तू अपना कम्पित गान न कर ॥

मधु-स्वप्न प्रणय से जिन पर कवि !
तू करता होगा कभी नाज़ ।
होगये प्रभाकर तुल्य अस्त ।
वेदना विरह की छोड़ आज ॥

इन विषम-प्रहारों को सहता, मर मिटने का अज्ञान न कर ।
कवि ! विरह्-वेदना के स्वर से, तू अपना कम्पित गान न कर ॥

तेरी वाणी में कम्पन है,
तेरी भाषा में स्पन्दन है ।
तेरी इन अभिलाषाओं में,
वैधव्य भरा जीवन-धन है ॥

तेरे उर - छाले हरे, अरे तू मधुर मिलन का ध्यान न कर ।
कवि ! विरह्-वेदना के स्वर से, तू अपना कम्पित गान न कर ॥

माना तू कवि है, प्रेमी है;
प्रेयसि आती है याद तुझे।
पर सुन, कर डालेगी बिल्कुल—
यह विरह-व्यथा बरबाद तुझे॥

रसमय अतीत की गाथा को, तू छोड़; कभी आह्वान न कर।
कवि! विरह-वेदना के स्वर से, तू अपना कम्पित गान न कर॥

तू मौन शीघ्र हो जायेगा,
यह भार वहन करते-करते।
कवि! तू विलीन हो जायेगा,
पद-चिह्नों सा मिटते-मिटते॥

तू कवि है, अपने मिटने में प्रेमी-पन का अज्ञान न कर।
कवि! विरह-वेदना के स्वर से, तू अपना कम्पित गान न कर॥

तू आया हे जगती तल पर,
कुछ नई चेतना लाने को।
कुछ नई साध, कुछ नई सूझ,
कुछ नई राह बतलाने को॥

तू सबका, अपना कहाँ मूर्ख! अपनेपन का अभिमान न कर।
कवि! विरह-वेदना के स्वर से, तू अपना कम्पित गान न कर॥

४०

बहुत दिनों के बाद तुम्हारी याद मुझे फिर सता रही है।

सहसा घूम उठी है अन्तर में,
पायल की मादक रुनझुन;
सहसा चूम उठी है अधरों को,
उस क्षण की मधुमय सिहरन;

बहुत दिनों के बाद आज फिर, आँखें आँसू बहा रही है।
बहुत दिनो के बाद तुम्हारी याद मुझे फिर मना रही है॥

थका हुआ मन, पुन. प्रतीक्षा–
करने के हित है अकुलाता;
रुकी हुई गति को फिर कोई,
प्रगति-पंथ है आज दिखाता;

बहुत दिनों के बाद साधना, सोई पीड़ा जाग रही है।
बहुत दिनों के बाद तुम्हारी, याद मुझे फिर सता रही है॥

क्यों यह आकस्मिक परिवर्तन,
आज हुआ मेरे प्राणों में;
कैसी यह नूतन स्वर लहरी.
गूँज गई मेरे गानों में;

'पुर्नमिलन संभव है शायद'—मुझे कल्पना बता रही है।
बहुत दिनों के बाद तुम्हारी, याद मुझे फिर सता रही है॥

४१

भर आये रतनारे नयना,
जब न मिला सन्देश तुम्हारा।

युग-युग का तम खोया मैंने,
अरमानों के दीप जला कर;
सँभल-सँभल कर गूँथे मैने,
मधु स्वप्नों के हार सजा कर;

बरस पड़े रतनारे नयना,
जब न मिला सन्देश तुम्हारा।
भर आये रतनारे नयना,
जब न मिला सन्देश तुम्हारा॥

चुन-चुन कर फूलों को मैंने,
निशि में दो पर्यंङ्क सजाये;
सोच यही सो गया एक पर,
कोई आकर मुझे जगाये;

स्वयं जगे निंदियारे नयना,
जब न मिला सन्देश तुम्हारा।
भर आये रतनारे नयना,
जब न मिला सन्देश तुम्हारा॥

संध्या की धूमिल वेला में,
द्वारे पर आ गया पुजारी;
प्रात होगया, किन्तु देव! वह,
रहा देखता बाट तुम्हारी;

सिसक उठे दुखियारे नयना,
जब न मिला सन्देश तुम्हारा।
भर आये रतनारे नयना,
जब न मिला सन्देश तुम्हारा॥

४२

तुम्हारे प्यार का सचमुच, न मैं कुछ भार ले पाया ।
तुम्हें अपना बना करके, न कुछ अधिकार दे पाया ।।

व्यथा की तप्त किरणों से,
हिमालय जब लगा तपने;
घटा बन घिर गईं तुम,
पर न मैं आधार ले पाया !

हृदय के शून्य - आँगन में,
प्रभा - सी मुस्कराईं तुम;
न मैं उस हास का—
स्वर्णिम सुखद संसार ले पाया !

समर्पण कर दिया तुमने,
सभी कुछ एक इङ्गित पर;
निराकृत का उपासक मैं,
न वह साकार ले पाया !

तुम्हारा दोष ही क्या,
मैं स्वयं हतबुद्धि गायक हूँ;
अलापे स्वर, बजी वीणा,
नहीं झंकार ले पाया !

४३

आज स्वप्न में देख तुम्हें फिर, सोईं सुधियाँ जाग उठी हैं !

दो क्षण की कहकर लौटा था, किन्तु न अब तक जा पाया हूँ,
अपने इष्टदेव को श्रद्धा के, कब फूल चढ़ा पाया हूँ;
सारा दोष मुझी पर इसका, तुम तो हो उदारतम दानी–
इसीलिये निर्मम कह मुझको, मेरी निधियाँ भाग उठी हैं !

आज स्वप्न में देख तुम्हें फिर, सोईं सुधियाँ जाग उठी हैं !!

मेरे एक बार कहने, पर ही, तुमने कर दिया समर्पण,
किन्तु तुम्हारी निश्छलता का, मैं निष्ठुर कर बैठा तर्पण,
कोमल कुसुम सरिस तब उर पर, मै निष्ठुर गिर पड़ा वज्र सा,
इसीलिये मेरे कुटीर को, रिद्धि-सिद्धियाँ त्याग उठी हैं !

आज स्वप्न में देख तुम्हें फिर, सोईं सुधियाँ जाग उठी हैं !!

४४

मैं समझ नहीं पाया अब तक, आखिर तुम माँग रहे हो क्या ?

मुस्कानो में कम्पन,
कम्पन में अधर तुम्हारे हिलते हैं;
नयनों में मादकता,
मादकता में मादक-मन पलते हैं;
गति में चंचलता,
चंचलतामें उलझा हुआ हृदय मेरा—

मैं सोच-सोच कर हार गया, लेकिन तुम चाह रहे हो क्या ?
मैं समझ नहीं पाया अब तक, आखिर तुम मांग रहे हो क्या ?

मैं तो उस पथ को ढूँढ रहा,
जिसमें न कभी मंजिल आये;
पर अब तक मेरे भावों को,
निष्ठुर! तुम जान नहीं पाये;
तुम लिप्त जगत में हो, लेकिन
मुझसे कहते 'जग छोड़ दिया'

मैं जान नहीं पाया, बोलो 'आखिर तुम त्याग रहे हो क्या ?'
मैं समझ नहीं पाया अब तक, आखिर तुम मांग रहे हो क्या ?

मेरी पीड़ा की दुनियां भी,
तुमने ही नष्ट-भ्रष्ट कर दी;
कुछ तृप्ति पा चला था जीवन,
तुमने उसमें अतृप्ति भर दी;
पर साथ नहीं अब देते हो,
तुम दुनियां नई बसाने में;

अनजान डगर में छोड़ मुझे, आखिर 'तुम भाग रहे हो क्या ?'
मैं समझ नहीं पाया अब तक, आखिर तुम मांग रहे हो क्या ?

४५

नयनों के कजरारे घन क्यों, बरसाते हैं मोती रानी ?

किस निष्ठुर ने, आज तुम्हारी,
आशाओं में अग्नि लगादी ?
किस निर्मम ने, मादक-दुनियाँ में
पीड़ा की ज्योति जगादी ?

अंतर में सिसकन भर-भर कर, सिहरन को क्यों खोतीं रानी ?
नयनों के कजरारे घन क्यों, बरसाते हैं मोती रानी ?

आज तुम्हारे कोमल उर पर,
किसने बज्र-प्रहार किया है ?
मुस्कानों को लेकर, किसने—
आँसू का उपहार दिया है ?

मिलन-बिटप को स्वयं मिटा, क्यों बीज विरह के बोती रानी !
नयनों के कजरारे - घन क्यों, बरसाते है मोती रानी !

छविमय मादकतम कलिका को,
किस पागल ने मसल दिया है ?
वह विक्षिप्त कौनसा है प्रिय !
जिसने मनको कुचल दिया है ?

अंचल की कर ओट, सलिल से क्यों मुख-शशि को धोती रानी !
नयनों के कजरारे - घन क्यों, बरसाते हैं मोती रानी ?

राष्ट्रीय - गीत

४६

याद रखना राग भैरव, पथिक ! पथ मत भूल जाना ।

मधुर चुम्बन में उषा के,
लालिमा जब छा रही हो;
मलय मन्द सुगन्ध बहती,
गीत मधुमय गा रही हो;

तब पुलक में भर कहीं तुम, बीच में मत डगमगाना ।
याद रखना राग भैरव, पथिक ! पथ मत भूल जाना ।।

शुभ्र ज्योत्स्ना से भरी जब,
रजनि हो नक्षत्र सेवित;
और चन्द्र अलापता हो,
प्रणय का स्वर हो प्रमोदित;

प्रेयसी को याद कर तब, भूल मत कर्त्तव्य जाना।
याद रखना राग भैरव, पथिक! पथ मत भूल जाना॥

प्रणय के मनहर, मधुर,
स्वप्निल क्षणों को याद करके;
क्षणिक सुख, चुम्बन मधुर,
आलिंगनों में भूल करके;

वीर मनसिज के शरों के, जाल में तुम फँस न जाना।
याद रखना राग भैरव, पथिक! पथ मत भूल जाना॥

देखकर दुर्जेय अरि-दल के,
सुसज्जित सैन्य - दल को;
भूल मत जाना कहीं तुम,
शौर्य को निज आत्मबल को;

वीर बन कर, धीर बन कर, पैर आगे को बढ़ाना।
याद रखना राग भैरव, पथिक! पथ मत भूल जाना॥

पर्वतों को तोड़ देना,
शत्रु का मुँह मोड़ देना;
दम्भ का घट फोड़ देना,
भीरुता को छोड़ देना;

दूर करने के लिए जग की व्यथा, सर बलि चढ़ाना ।
याद रखना राग भैरव, पथिक ! पथ मत भूल जाना ।।

४७

पंथी आ रहा, निर्भय साज सजाये ।
निर्भय साज सजाये ।।
गुन-गुन गा रहा, भैरव राग सुनाये ।
निर्भय साज सजाये ।।

जीवन-ज्योति जगेगी जग में,
जब वह पथ दिखलाये;
सोते हैं जो आज नींद में,
उनको पुनः जगाये;

आकर शान्ति का, वह सन्देश सुनाये ।
निर्भय साज सजाये ।।

महामन्त्र मृतकों में फूंके,
पल में उन्हें जगाये;
अट्टहास भीषण हो ऐसा,
नभ थर - थर थर्राये;

डर कर भीरुता, जिसको देख पलाये ।
निर्भय साज सजाये ।।

प्रलय मचादे आ अरि-दल में,
शोणित धार बहाये;
देख दंग जिसको जग हो वह,
शोणित धार बहाये;

झंडा व्योम तक, वह फर-फर फहराये ।
निर्भय साज सजाये ।।

देश धर्म पर जान गंवा दो,
यह कर्त्तव्य सिखाये;
समता और एकता का वह,
अनुपम पाठ पढ़ाये;

जग को प्रेमका, परिचय परम दिखाये ।
निर्भय साज सजाये ।।

४८

आज जहाँ में सबसे प्यारा ।
है 'जयहिन्द' हमारा नारा ॥

जीवन-ज्योति जगाने वाला,
अरि-दल को दहलाने वाला;
करे भीरुता का मुँह काला,
नव चेतनता लाने वाला;

भारतीय जन - मन का प्यारा ।
है 'जयहिन्द' हमारा नारा ॥

इन्कलाब है इसमें - स्वर,
यह चालीस कोटि का अन्तर;
मन की आस इसी पर निर्भर,
यह स्वतन्त्रता का सुन्दर घर;

हमने इस पर तन - मन वारा।
है 'जयहिन्द' हमारा नारा॥

आजादी की शान यही है,
भारत माँ का मान यही है;
हम सब का सम्मान यही है,
पुण्य धर्म, तप, दान यही है;

आज इसी का लिया सहारा।
है 'जयहिन्द' हमारा नारा॥

हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई,
सब आपस में भाई - भाई;
करें परस्पर नहीं लड़ाई,
सब को आज अहिंसा भाई;

सब ने मिल कर यही पुकारा।
है 'जयहिन्द' हमारा नारा॥

इसे बोलते बढ़ जायेंगे,
रोके से कब रुक पायेंगे;
'बापू' के उपदेशामृत को,
हम घर-घर में पहुँचायेंगे;

हम सब का यह ही रखवारा।
है 'जयहिन्द' हमारा नारा॥

राम-राज्य का है इसमें घर,
करते हमको प्यार जवाहर;
जन-जन के मन की आशाऐं,
एक इसी पर ही हैं निर्भर;

भारतीय कण-कण का प्यारा।
है 'जयहिन्द' हमारा नारा॥

४९

फिर भी दुनियाँ ने लहराते,
इस वीर तिरंगे को देखा।

अपनी आजादी की खातिर,
ज्यों ही मुंह खोला मार पड़ी;
यदि चले प्रदर्शन को, लाठी,
बन्दूक, तेग की धार पड़ी;
सब कुछ कीना,
सब कुछ छीना,
भूखे, नंगे, बेहाल किये;
फिर भी दुनियाँ ने लहराते,
इस वीर तिरंगे को देखा।।

पथ-भ्रष्ट हमें करने वाले,
जाने कितने तूफान उठे;
प्रतिबन्ध लग गया वाणी पर,
जब अपने दुख के गान उठे;
बिजलियाँ गिरीं,
किस्मतें फिरीं,
मिट जाने को लाचार हुए,

फिर भी दुनियाँ ने लहराते,
इस वीर तिरंगे को देखा ॥

इस ओर हुई ध्वनि इन्कलाब,
उस ओर गोलियोंकी दनदन;
लाशों पर लाश गिरीं भू पर,
घर-घर में गूंज उठा क्रंदन;
बह चला रक्त,
हो गया सख्त,
कुछ और अधिक ही अनाचार,

फिर भी दुनियाँ के लहराते,
इस वीर तिरंगे को देखा ॥

आ गया दिवस वह आज किन्तु,
भारत माता की हथकड़ियाँ;
हैं टूट गईं पल भर में ही,
छा रहीं चतुर्दिक हैं खुशियाँ;
रिपु भागा है,
फिर जागा है,
कहता नवयुग का नव-विहान—
सचमुच दुनियाँ ने लहराते,
इस वीर तिरंगे को देखा ।।

५०

प्रतिक्षण नूतन, प्रतिपल मनहर,
दीपक युग - युग जले हमारा !

जिसमें सब कुछ होम कर दिया,
अनुष्ठान वह पूर्ण हो गया;
और दासता का उन्नत गिरि,
आज गिर पड़ा चूर्ण हो गया;

शुभ्र प्रभात निखर आया है,
बीत चुकी है रजनी काली;
आज मुक्ति का दिवस,
तोड़ दी है हमने बन्धन की कारा;

प्रतिक्षण नूतन, प्रतिपल मनहर,
दीपक युग - युग जले हमारा !!

५१

लहरता चला आ रहा है सदा से,
लहरता रहेगा तिरंगा हमारा !

हमें आज अपनी डगर से हटाने,
गगन थर-थराये, धरा डगमगाये;
उठें मेघ ऊपर मिलें आस्मां में,
लगातार अंगार, बिजली गिरायें;
चलें सप्त सागर लिए तप्त पानी,
मगर हम जवांमर्द बढ़ते रहेंगे;
हमारे सरों पर किए छत्र छाया,
लहरता रहेगा तिरंगा हमारा !

लहरता चला आ रहा है सदा से,
लहरता रहेगा तिरंगा हमारा !!

५२

मुक्ति का सन्देश लेकर, आ रही जगमग दिवाली !

मांग के सिन्दूर कितने ही गये इस पर चढ़ाये,
लाल कितने ही स्वयं, माँ के करों ने हैं लुटाये;
शेष गंगाजल न था, तब रक्त युवकों ने दिया था,
छोड़ कर अमृत, हलाहल भी इसी के हित पिया था;

आज उन सबके गुणों को, गा रही जगमग दिवाली !
मुक्ति का सन्देश लेकर, आ रही जगमग दिवाली !!

विश्व कानन में सुरभि थी, किन्तु यह भू-भाग ऊसर,
मृत्यु के संघर्ष में पलता जहाँ जीवन निरन्तर;
दासता में बंध हिमालय, हो रहा था गर्त्त जैसा,
कान्तिमय भारत बना था, एक भीषण नर्क जैसा;

आज उसमें स्वर्ग नूतन ला रही जगमग दिवाली !
मुक्ति का सन्देश लेकर, आ रही जगमग दिवाली !!

"साधना की पूर्त्ति होली, अब नया निर्माण होगा,
विश्व-गुरु भारत ! तुझी से विश्व का कल्याण होगा;
किन्तु अपनी शक्ति का, सब ओर तू विस्तार कर ले,
बढ़ रहा आपत्तियों का सिंधु, इसको पार करले;"

चेतना यह नवल देती, जा रही जगमग दिवाली !
मुक्ति का सन्देश लेकर, आ रही जगमग दिवाली !!

५३

चमक रहा है पैसे वाला !

आज विश्व ब्रह्माण्ड विकल है,
चमक रही है रण की चण्डी;
प्रलय-निकेतन खुला हुआ है,
फहरा रही मृत्यु की झण्डी;
विविध वेदनाओं के मारे,
व्यथित हो रहे हैं जन सारे;
किन्तु अमित उत्साह साथ ले,

गमक रहा है पैसे वाला !
चमक रहा है पैसे वाला !!

आज एक मुट्ठी दानों पर,
सिसक-सिसककर प्राण गंवाते;
इज्जत अपनी बेच रहे हैं,
लेकिन फिर भी पार न पाते;
दीन - हीन दुखिया भारत के,
लगा रहे नारे आरत के;

पर अनन्त धन-राशि समेटे,

झमक रहा है पैसे वाला !
चमक रहा है पैसे वाला !!

आज चक्र में बेकारी के,
आ-आ करके पिस-पिस जाते;
महादुखित हो, मौनभाव से,
दृग में आंसू भर-भर लाते;
रखने की खातिर इज्जत को,
मिटा रहे हीला-हुज्जत को;

लेकिन इन पर रोब जमाता,

धमक रहा है पैसे वाला !
चमक रहा है पैसे वाला !!

पर वह दिवस शीघ्र आयेगा,
जब जग देखेगा आँखों से;
बंधा हुआ होगा यह बेकल,
दीन - जनों के अभिशापों से;
किये हुए फल इसे मिलेंगे,
अब के मुरझे फूल खिलेंगे;

लोग कहेंगे चिढ़ा-चिढ़ा कर–

नमक रहा है पैसे वाला !
चमक रहा है पैसे वाला !!

५४

जो मातृभूमि पर बलि होकर,
जननी के सुत जायेंगे;
वे सचमुच ही, स्वर्ग में ठौर,
सबसे पहले पायेंगे;

× × × ×

युग-युग तक उनका नाम,
जगत उनके पीछे गायेगा;
वे चले जायेंगे, पर अनन्त यश,
बाक़ी रह जायेगा।